अध्याय-6

दुष्यंत कुमार की जीवन-दृष्टि

1. गाँधीवादी दृष्टि
2. संघर्ष का स्वर
3. क्रांति का स्वर
4. आस्थावादी दृष्टि
5. आशावादी दृष्टि
6. मानवतावादी दृष्टि

सन्दर्भ-सूची

जीवन और साहित्य का संबंध घनिष्ठ होता है । जीवन साहित्य-सर्जन के लिए प्रेरित करता है । साहित्य जीवन को शब्दों के द्वारा नया रूपाकार देता है । साहित्य में हम समाज के विविध रूपों को देखते हैं । प्रत्येक रचनाकार जीवन के विविध रूपों को अपने नजरिये से गहराई से देखता है, परखता है, फिर उसे रचनात्मक रूप देता है । जीवन को देखने और परखने की कसौटी प्रत्येक रचनाकार की भिन्न-भिन्न होती है । जीवन का प्रत्येक रूप, प्रत्येक भाव रचनाकार की संवेदना का संस्पर्श नहीं कर पाता है । जो रूप और जो भाव उसकी संवेदना को झकझोरता है, उसे उद्वेलित करता है, वहीं जीवन-दृष्टि बनकर उसके रचना-संसार में प्रकट होता है । रचनाकार सर्वप्रथम जीवन को भोगता है, उसके विविध पहलुओं का सूक्ष्म अवलोकन करता है, तत्पश्चात् उसे अपने सृजन-संसार में नई भाव-भंगिमा के साथ चित्रित करता है । प्रत्येक रचनाकार की जीवन-दृष्टि पृथक होती है । इस पृथकता के मूल में रचनाकार के जीवनावलोकन और जीवनानुभव की भिन्नता है । जीवनावलोकन और जीवनानुभव की क्षमता रचनाकार की संवेदनशीलता पर निर्भर है । जितनी गहरी संवेदनशीलता होगी, उतनी ही परिपक्व उसकी वैचारिकता होगी । रचनाकार किन मूल्यों को महत्वपूर्ण मानता है और कौन से मूल्य उसके लिए व्यर्थ है, यह जीवन के प्रति उसके नजरिये से जाना जा सकता है । रचनाकार अपने युग और परिवेश से गहन रूप से प्रभावित होकर ही रचना-कर्म की ओर प्रवृत होता है । उसका युग और परिवेश ही उसे रचना कर्म के

लिए कच्चा माल प्रदान करता है । युगीन हलचल रचनाकार के चिंतन पक्ष को जागृत कर, उसमें वैचारिकता का उन्मेष करती है । यही वैचारिकता प्रौढ़ होकर उसकी जीवन-दृष्टि के रूप में उसके रचना–संसार में प्रकट होती हुई पाठकों से साक्षात्कार करती है । राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, नैतिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक परिवेशगत यथार्थ रचनाकार की सृजनशीलता और वैचारिकता को नये सन्दर्भो के साथ सम्पृक्त करती है । रचनाकार की जीवन-दृष्टि की निर्मिति में युगीन परिवेश और संस्कारों का विशेष प्रभाव तो रहता ही है, कई विशिष्ट व्यक्तित्व का भी प्रभाव रहता है । एक रचनाकार की जीवन-दृष्टि रचना के रूप में, उसकी सोच, उसके चिंतन को जाहिर करती है ।

दुष्यंत कुमार हिन्दी साहित्य की नई कविता धारा के विशिष्ट कवि और एक संवेदनशील सर्जक है । कवि दुष्यंत कुमार की चेतना के केंद्र में हमेशा से सामान्यजन रहा है । वे हर क्षण अपने आसपास सामान्यजन को महसूस करते हैं । उनकी जीवन-दृष्टि का विकास इसी सामान्यजन की दुरावस्था को देखकर हुआ । वे लिखते हैं –

" मेरे चारों ओर
सड़कों और झोपड़ों के जाल
और तरह–तरह के सवाल क्यों हैं ? "[1]

सर्जन-कर्म को महत्वपूर्ण और जनोपयोगी माननेवाले कवि दुष्यंत कुमार की जीवन-दृष्टि युगीन जन-विरोधी परिस्थितियों की निर्मिति है । दुष्यंत कुमार एक कवि के रूप में जब हिन्दी जगत में पदार्पण करते हैं, वह अस्थिरता, अराजकता और अनास्था का समय था । भारत वर्षों की गुलामी से मुक्त हो रहा था । पर इस मुक्ति के साथ ही कई तरह की विसंगतियाँ समाज में पनपने लगी थीं । अंग्रेजो की 'फूट डालो और राज करो' की नीति का नया संस्करण पूँजी परिचालित लोकतंत्र के रूप में नजर आया । चारों ओर के मानवविरोधी स्थितियों ने जन-प्रतिबद्ध रचनाकार के मर्म को गहरे स्तर तक आन्दोलित किया । वे आसपास के भयावह यथार्थ को चुपचाप दर्शक बनकर नहीं देख सकें और इस व्यवस्था में बदलाव लाने के लिए अपनी लेखनी को सशक्त बनाने में जुट गये । सामाजिक यथार्थ के प्रवक्ता दुष्यंत कुमार की जीवन–दृष्टि मूल रूप से मानवतावादी है । वे मानवता की रक्षा और विकास के लिए प्रतिबद्ध है । उन्होंने स्वयं को 'भूखी मानवता का कवि' और 'जर्जर जनता का उद्घोषक' कहा है । उनकी रचनाओं के समग्र अवलोकन से यह बात प्रमाणित हो जाती है कि उन्होंने अपने बारे में जो कुछ कहा है, वह बिल्कुल सच है । सामान्यजन के प्रति आत्मीयता और सामाजिक अव्यवस्था के प्रति क्षोभ ने उनकी जीवन-दृष्टि को मानवीय-चेतना से परिपूर्ण बनाया । वास्तव में कवि का चिंतन कोरी कल्पना पर आधारित नहीं, वह जीवन के भयावह यथार्थ के साक्षात्कार से निष्पन्न है । यही कारण है कि जहाँ

भी उन्हें मानवता के समर्थक दिखायी दिये, वे उनकी ओर आकृष्ट हो गए। अपने कवि-कर्म के आरम्भिक दौर में जहाँ वे गाँधीजी के 'अहिंसात्मक दृष्टि' की ओर आकर्षित होते हैं , वही समाज की अतिशय निष्ठुरता से आहत हो मार्क्स के 'विद्रोह और क्रांति' को उचित ठहराते हुए सामान्यजन को प्रतिवाद का स्वर तेज करने के लिए प्रेरित करते हैं। कवि तत्कालीन सत्ता और शासन के प्रति मोहभंग से उत्पन्न निराशा और अनास्था के बीच आशा और आस्था के सूर्य को लेकर परिवर्तन का नया सवेरा लाने के लिए सूर्य का स्वागत करने हेतु चल पड़ते हैं।

1. गाँधीवादी-दृष्टि

दुष्यंत कुमार की सृजन–यात्रा का आरम्भ आजादी के आसपास हुआ। उम्र से तो वे किशोरवय थे, पर युगीन हलचलों से अनभिज्ञ न थे। भारतीय जनमानस पर महात्मा गाँधी का प्रभाव किस कदर व्याप्त था, इसको वे प्रत्यक्ष देख रहे थें। गाँधीजी आमजन के सर्वप्रिय नेता बने हुए थे। बापू का आमजन के प्रति प्रेम और उत्तरदायित्वबोध ही था जिससे सभी सम्मोहित थे। कवि के पिता चौ. भगवत सहाय स्वयं गांधीवादी थे। कवि के आरम्भिक लेखन पर गाँधीजी के सत्य और अहिंसा जैसे मानववादी विचारों का व्यापक प्रभाव पड़ा। बापू के अंतर्मन में गरीब, बेबस, उपेक्षित मानव के लिए जो गहन करूणा व्याप्त थी, उससे कवि अत्यंत अभिभूत हुए। समाज के विपन्न वर्ग के लिए बापू की संवेदना मात्र

वाचिक नहीं अपितु आत्मिक थी । गाँधीजी ने अपने आप को सम्पूर्ण रूप से भारत की आजादी और आमजन के उद्धार के लिए समर्पित कर दिया था । वरिष्ठ गांधीवादी आलोचक विष्णु प्रभाकर ने लिखा है – "गाँधीजी मानते थे कि उनके सपनों का स्वराज्य गरीबों का स्वराज्य होगा । जीवन की जिन आवश्यक वस्तुओं का उपयोग राजा और अमीर लोग करते हैं, वही उन्हें भी सुलभ होनी चाहिये । उनके लिए प्रजातंत्र का अर्थ था कि इस तंत्र में नीचे-से-नीचे और ऊँचे से ऊँचे आदमी को बढ़ने का समान अवसर मिलना चाहिए ।"[2] इस कथन से स्पष्ट है कि गाँधीजी ने सामाजिक और आर्थिक समानता पर विशेष बल दिया । गरीब गाँधीजी के चिंतन के केंद्र में थे । वे स्वराज्य के द्वारा गरीबों के जीवन से दुख और अभाव को मिटाना चाहते थे । दुष्यंत कुमार की आरम्भिक कविताओं में गाँधीजी के मानवतावादी विचारों का खासा प्रभाव दिखता है । कवि भी अपनी कविता को समाज के बेबस, लाचार, विपन्न, उपेक्षित वर्ग के समर्थन में खड़ा करते हैं । कवि के अंत:करण में समाज और आमजन के प्रति जो करूणा और संवेदनशीलता दिखलाई पड़ती है, उसका उद्‌गम गाँधीजी के विचारों से माना जा सकता है । गाँधीवाद की ओर उनका झुकाव कैसे हुआ है, इन कारणों की पड़ताल करते हुए विजय बहादुर सिंह लिखते हैं – "राष्ट्रीय आन्दोलन को उसने अपनी किशोर आँखों से देखा था । पिता चौ. भगवत सहाय भी गाँधीजी के क्रियाकलापों से अत्यंत प्रभावित रहे हैं । किशोर काल में गाँधी पर लिखी उसकी अनेक कविताएँ यह

साबित करती हैं कि गाँधी को वह भारत के लोगों का राष्ट्रपिता और भाग्यविधाता ही नहीं, देवदूत भी समझता है और उसकी यह धारणा निरंतर बलवती होती गई । शायद तभी से अन्याय का प्रतिरोध और रामराज्य का सपना उसके कवि-जीवन का बुनियादी धर्म बन गया ।"[3]

उन्होंने अपनी कई आरम्भिक कविताओं में गाँधीवादी विचारधारा का समर्थन किया है । वे महात्मा गाँधी को कई विशेषणों से सम्बोधित करते हैं । उनके अनुसार बापू 'भारत का भगवान','विष्णु का अवतार',मानवता का समर्थक', 'युगपुरूष', 'शक्तिपुंज', 'ज्ञानकुंज' आदि कई रूपों में अवतरित हुए हैं । कवि बापू के योगदान और महत्ता से सम्पूर्ण जगत को परिचित कराते हैं । वे यह मानते हैं कि सामाजिक, आर्थिक, नैतिक और सांस्कृतिक समस्याओं के निराकरण के लिए गाँधीजी के विचार ही श्रेष्ठ है । संसृति के विकास के लिए गाँधीजी का मानवतावादी पथ ही सर्वोत्तम है । कवि जीवन के प्रत्येक क्रिया-व्यापार को मानवीय नजरिये से देखते और परखते हैं ।

" मानकर आदर्श चल पद-चिह्न पर
तभी संसृति हो सकेगी अग्रसर "[4]

गाँधीजी ने भारत को केवल अंग्रेजो से मुक्त कराने की ही चेष्टा नहीं की अपितु सत्य और अहिंसा रूपी हथियार से मानवविरोधी संकीर्णता को दूर करने के लिए भी तत्पर रहे । कवि दुष्यंत कुमार भी कलम रूपी हथियार से समाज में व्याप्त

विषमता, अव्यवस्था और जनविरोधी शक्तियों से लोहा लेने के लिए प्रेरित होते हैं । वे रचनाकार को 'योद्धा' संबोधित करते हुए लिखते हैं –

" कविता से धर्म भला निभता है
पूरा हो पाता कर्तव्य कहीं !
कविता दस-पंद्रह को सुख देती
लेकिन दस-पंद्रह की सृष्टि नहीं
अंबर के आँचल को छोड़े हम
धरती पर टिके हुए हाथ गहे
मैंने तो यही कहा-
लड़े पक्षधर हो मानवता के
कवि भी औ' योद्धा भी हमीं रहें ।"[5]

गाँधीजी मानवीय-मूल्यों के प्रसार के लिए प्रतिबद्ध थे । वे सच्चे अर्थों में एक राजनीतिक व्यक्तित्व नहीं बल्कि एक मानवीय व्यक्तित्व एवं मानवतावादी मूल्यों की पहचान है । स्वानुभूत सत्य पर आधारित उनका चिंतन प्रत्येक दृष्टिकोण से जन के पक्ष में है, उनके उन्नयन के लिए हैं । वास्तव में बापू विदेशी शासन के दमन चक्र से उतने व्यथित नहीं थे, जितने की उस मानसिक जड़ता और दासवृत्ति से जो भारतीय समाज के धनी और ऊँच वर्ग में परिव्याप्त थी । हमारी पारस्परिक वैमनस्य भावना, एकता और भाईचारे की कमी की वजह से

हम अंग्रेजो की दासता के शिकार हुए । हमारी आपसी फूट का फायदा अंग्रेजो ने बखूबी उठाया । आर्थिक, सामाजिक और नैतिक सभी दृष्टियों से हमें काफी क्षति पहुँचाई गई । इस क्षति की पूर्ति के लिए बापू ने सत्य, प्रेम और अहिंसा जैसे मानवीय मूल्यों के विस्तार को बढ़ावा दिया । चिंतक फुलार मिलर ने एक स्थान पर गाँधीजी के बारे में लिखा है –''किसी जमाने में बुद्ध के सम्मुख जिस तरह मानवप्राणी की वेदना अपना अवगुंठन उठाकर खड़ी हो गई थी, उसी तरह अब वह गाँधी के सामने खड़ी हो गई है । इसलिए वे अपनी भावनाएँ और शक्तियाँ ऐसे किसी उद्योग में खर्च नहीं कर सकते जो भूखों को खिलाने में, नंगों की काया ढापने में और दुखियों को ढाढस बँधाने में प्रत्यक्ष रूप से सहयोग न दे ।''[6] फुलार मिलर के इस कथन से जाहिर है कि गाँधीजी प्रत्येक कार्य-व्यापार को मानवीयता की कसौटी पर कसा करते थे और उसी को महत्व देते थे जो इस पर खड़ा उतरता था ।

दुष्यंत कुमार ने अपनी आरम्भिक कई कविताओं में गाँधीजी के विचारों की प्रशंसा की है । वे बापू के बिना स्वस्थ और खुशहाल समाज की परिकल्पना ही नहीं कर पाते हैं । बापू उनके विचार से 'युग के पथ प्रदर्शक' थे । कवि को लगता है कि उनकी मृत्यु के उपरांत युग दिग्भ्रमित हो गया है –

'' श्वास में जिसकी स्वराज्य दुलार था
आज में बस ऐक्य का सुविचार था

परिस्थितियाँ हाथ बाँधे डोलतीं
मुश्किलें आसान होकर बोलतीं
एकता का सुदृढ़ हार पिरो गया
आज युग का पथ प्रदर्शक खो गया ।''[7]

चन्दौसी काल के एक रजिस्टार पर किशोर कवि का अंग्रेजी में लिखा हुआ एक निबंध उपलब्ध होता है, जिसका शीर्षक है – 'हाउ डू यू सेलिब्रेट योर इंडिपेंडेंस डे'। इस निबंध में बापू की मृत्यु से उत्पन्न दर्द और निराशा का भाव दृष्टिगत होता है । विजय बहादुर सिंह का कथन इस सन्दर्भ में उल्लेख्य है – ''निबंध स्मृतिपरक है और 15 अगस्त, 1947 के दिन के उल्लासपूर्ण आयोजनों का इतिहास प्रस्तुत करता है, किंतु आखिर के कुछ वाक्य अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं, जिनका सार यह है कि भारत अब एक स्वाधीन राष्ट्र है । हम भारतवासी दुनिया के सामने अपना मस्तक ऊँचा कर गौरव और स्वाभिमान के साथ खड़े होते हैं । प्रत्येक नागरिक को विकास करने की समान सुविधाएँ प्राप्त हो सकेंगी । भारत के लोग अपनी भूख, गरीबी, अज्ञानता और अन्य सामाजिक अभिशापों से लड़कर मुक्ति पा सकेंगे । लेख का अंतिम वाक्य अत्यंत उल्लेखनीय है जिसमें कवि लिखता है कि 'लेकिन यह बेहद शर्मनाक है कि हमीं में से एक ने राष्ट्रपिता की हत्या कर दी ।''[8] कवि को लगता है कि जिस राष्ट्रपिता ने भारतवासियों को विदेशी पराधीनता से मुक्त कराने के लिए अस्त्र-शस्त्र के समक्ष अहिंसा का रास्ता अपनाया और अकल्पनीय जीत हासिल

की, भारत को गरीबी मुक्त कराने के लिए कई उद्योग किए, स्त्रीयों की शिक्षा और उद्धार के लिए कार्य किए, जिसकी हर सोच में, हर उद्यम में सामान्यजन की हितचिंता समाहित थी, उस राष्ट्रपिता की इंसानियत के प्रत्युत्तर में अपने ही भारतवासी भाई द्वारा गोली चलाकर हत्या कर देना, साहस नहीं कायरता है । उनकी हत्या से संसृति शून्यता से भर गई है । कवि के लिए बापू जन-जन की आशा के केंद्र और शक्तिपुंज थे ।

कवि दुष्यंत कुमार की जीवन-दृष्टि पर गाँधीजी का प्रभाव परिलक्षित होता है खासकर समाज के हाशिये पर खड़े लोगों के प्रति जो उत्तरदायित्वबोध और मानवीयता दिखाई देती है, उसके प्रस्फुटन में गाँधीजी के विचारों का योगदान रहा है । दुष्यंत कुमार के समकालीन कवियों में एक भवानीप्रसाद मिश्र विशुद्ध गाँधीवादी रचनाकार माने जाते हैं । भवानीप्रसाद मिश्र ने गाँधीवादी विचारधारा को पूर्णतः अपनाया है । दुष्यंत कुमार इस अर्थ में गाँधीवादी नहीं है । वे विचारधाराओं को इस कसौटी पर परखा करते थें कि उसमें आम उपेक्षित जनों के लिए सच्ची संवेदना और हितचिंता किस हद तक व्याप्त है । उन्होंने लिखा भी है –"जहाँ सच्चाई का हनन होता है, जहाँ स्वतंत्रता के मिजाज को दबाया जाता है, वहाँ अपनी अहिंसा की सारी परम्परा और पृष्ठभूमि के बावजूद हम खामोश नहीं बैठ सकते और हम क्या, शायद विश्व के किसी भी देश के साहित्य में ऐसी मिसाल न मिले कि कोई ऐसी तीखी प्रतिक्रिया हुई और वहाँ का साहित्य उससे निस्संग रह

गया ।"[9] स्पष्ट है कि कवि के लिए मानवीयता सर्वप्रमुख है । उनके जीवन-दृष्टि के मूल में मानवीय हित–चिंता समाहित है । यही वजह है कि दुष्यंत कुमार की परवर्ती दौर की रचनाओं में गाँधीजी की मानवतावादी दृष्टि तो विद्यमान है किंतु गाँधीवादी आदर्श विलुप्त है । जो कवि अपने सृजन के आरम्भिक दौर में 'सत्य और अहिंसा' के पथ पर चलने का आग्रह करते हैं और इस पथ को सही ठहराते हैं, वही कवि सृजन के परवर्ती दौर में समाज की अतिशय निष्ठुरता और अमानवीय व्यवहार देखकर आमजन को 'तबीयत से पत्थर उछालने', 'पेट भरकर गालियाँ देने' और 'हंगामा खड़ा करने' के लिए कहते हैं ।

अतः यही कहा जा सकता है कि वे विचारधारा का पिछलगुआ बनने के बजाये, उसमें निहित मानवीय मूल्यों को ग्रहण कर लेते हैं । उनकी आरम्भिक रचनाओं में गाँधीवादी विचारधारा के प्रति समर्थन दिखता है, वही परवर्ती रचनाओं में वे इसका विमर्थन करते हुए दिखते हैं ।

2. संघर्ष का स्वर

संघर्ष कवि की जीवनाशक्ति है । वे उस जीवन को निष्फल मानते हैं, जहाँ संघर्ष नहीं है । संघर्ष व्यक्ति को उसके आंतरिक शक्ति से परिचित कराती है । उसमें मौलिकता का सृजन करती है-

" खंड–खंड होकर जिसने

जीवन-विष पिया नहीं ,

सुखमय, संपन्न मर गया, जो जग में आकर

रिस-रिसकर जिया नहीं ,

उसकी मौलिकता का दंभ निरा मिथ्या है

निष्फल सारा कृतित्व

उसने कुछ किया नहीं ।''[10]

दुष्यंत कुमार निर्भय कवि है । वे पराजय स्वीकरने के बजाए, उस स्थिति को छेड़ना ज्यादा पसन्द करते हैं इस बात की चिंता किए बगैर कि इस वजह से उसका हश्र क्या होगा –

'' अब अपने मेहरबाँ से छेड़ करना भी जरूरी है

भले ही शख्सियत अपनी टुकड़ों में बदल जाए ।''[11]

अपनी निर्भयता के बारे में वे लिखते हैं –

'' मैं अब किसी से डरता नहीं हूँ

चाहे वह चिड़िया हो या शेर

धर्म हो या नैतिकता

आदमी हो या राजनीति ''[12]

डॉ. कांतिकुमार के शब्दों में कहा जाए तो- ''एक संवेदनशील प्रबुद्ध नागरिक की तरह दुष्यंत समसामयिक समस्याओं के प्रति जागरूक रहते हैं किंतु उनकी

संवेदनशीलता कभी पलायन, समझौते या भय का रूप ग्रहण नहीं करती । वे समसामयिक जीवन की समस्याओं का साक्षात्कार करते हैं किंतु कभी उनसे आक्रांत नहीं होते ।''[13]

स्पष्ट है कि कवि दुष्यंत कुमार ने जीवन में संघर्ष के महत्त्व को जाना और समझा था । उनकी रचनाधर्मिता इस संघर्ष से निखरकर ही पाठकों को संवेदित कर पायी है ।

3. क्रांति का स्वर

कहीं-कहीं पर दुष्यंत कुमार की जीवन–दृष्टि मार्क्सवाद से प्रभावित दिखती है । मार्क्स का मानना है कि क्रांति से ही समाज में परिवर्तन लाया जा सकता है । मार्क्स अन्याय के दमन के लिए क्रांति के रास्ते पर चलने का आह्वान करता है । कवि दुष्यंत कुमार भी बदलाव के लिए क्रांति को महत्त्वपूर्ण मानते हैं । 'आवाजों के घेरे' संग्रह की अंतिम कविता 'गौतम बुद्ध से' में गौतम बुद्ध की इस मान्यता से सहमत दिखते हैं कि दुःख जीवन का शाश्वत सत्य है और यह सर्वत्र व्याप्त है, किंतु कवि यह मानने को तैयार नहीं है कि 'संघ धम्म की शरण' से वर्तमान विसंगतिपूर्ण व्यवस्था में एक जन–प्रतिबद्ध कवि को शांति मिलेगी । कवि को लगता है कि जब चारों ओर अराजकता छाया हुआ हो, सब गलियों और दरवाजों से चीख और कराहें उठ रही हो, ऐसी भयावह स्थिति में समस्या का यह

किंचित मात्र भी सटीक समाधान नहीं हो सकता । कवि गौतम बुद्ध से ही प्रश्न करते हैं –

" आज धुएँ के इस घेरे में
तुम जीते होते तो बोलो,
तुम 'दर्शन' की सीख माँगते
या कहते 'ये खिड़की खोलो'
क्या तब भी ये 'दर्शनशास्त्र'
'धम्म' या 'संघ' सुहा सकते थे,
क्या तुम युग के स्वर से कोई
स्वर अलगा कर गा सकते थे?
ये जो उठती चीख-कराहें
सब गलियों सब दरवाजों से,
सच कहना क्या बचकर जा सकते थे
तुम इन आवाजों से? "[14]

भगवान बुद्ध ने जिस दुःख की बात की थी वह 'अनायास दुःख' था । आज चतुर्दिक 'सायास दुःख' व्याप्त है । भूख, गरीबी, बेरोजगारी, महँगाई आदि दुःख चन्द लोगों की स्वार्थपरता के कारण समाज में अपनी जड़े गहरी करता जा रहा है । ऐसे दुःखों का निवारण बोधिवृक्ष के नीचे आँख मीचने पर नहीं हो सकता । इसके

लिए प्रत्यक्ष संघर्ष ही एकमात्र उपाय है । कवि क्रांति का बिगुल बजाते हुए लिखते हैं –

" मुझमें रहते हैं करोड़ों लोग चुप कैसे रहूँ ,
हर गज़ल अब सल्तनत के नाम एक बयान है ।"[15]

अपनी क्रांतिकारी चेतना के कारण कवि अपने सृजन को हथियार के तौर पर इस्तेमाल कर संकटपूर्ण जीवन स्थिति से सामान्यजन को उबारने के लिए हंगामा करते हैं । वे तानाशाही और जुल्म को अब और बरदाश्त करने के लिए तैयार नहीं है । वे सामान्यजन को उत्प्रेरित करते हुए कहते हैं –

" पक गई है आदतें , बातों से सर होगी नहीं ,
कोई हंगामा करो, ऐसे गुजर होगी नहीं ।"[16]

इसी तरह वे घुट –घुट कर जीवन जीने के पक्ष में भी नहीं है । कवि व्यवस्था की अराजकता को नेस्तानाबूद करने के लिए पूरी तरह से तैयार है –

" हर दर्द बेनकाब हुआ चाहता है अब
सीने में इंकलाब हुआ चाहता है अब ।"[17]

संविधान में 'सर्वोपरि' रहनेवाले आमजन को 'कीड़ों–सी कुलबुलाती जिन्दगी' जीते हुए देखकर कवि का हृदय आहत होता है । पूँजीवादी तंत्र के पैरों तले सामान्यजन को दो वक्त की रोटी जुटाते–जुटाते 'अस्थि-कंकाल' बनते देख कवि में व्यवस्था के प्रति तीव्र आक्रोश उत्पन्न होता है । स्थिति में बदलाव लाने की बात बार-बार

की जाती है, पर स्थिति बदलने के बजाए और भी बदतर होती देख कवि असहनशील हो उठते हैं । उन्हें लगता है कि ऐसी असंवेदनशील व्यवस्था में परिवर्तन एकमात्र क्रांति के द्वारा ही लाई जा सकती है । कवि भलीभांति समझ चुके हैं कि जब तक हम जुल्म के खिलाफ आवाज नहीं उठायेंगे, तब तक हमपर जुल्म होता ही रहेगा । किंतु जिस दिन सचमुच प्रतिवाद का स्वर मुखरित होगा, कोई भी जन विरोधी ताकत उस स्वर को दबा नहीं पायेगी । वे सामान्यजन से कहते हैं –

" जुल्म चाहे कितना हो
आवाज मरती नहीं है
उसने सिर्फ इतना कहा था कि आवाजें देते रहो
कोई पूरब से दो
कोई उत्तर–दक्खिन और पच्छिम से
सिर्फ जुड़े रहो .....बोलते हुए
यानी खामोशी तोड़ते रहो
जैसे सड़कों पर पत्थर
या शोषण की जंजीरें तोड़ी जाती हैं "[18]

कवि यह मानते थे कि प्रतिकूल परिस्थिति हो या व्यवस्था, किसी के भी सामने हार नहीं मानना चाहिए अपितु उसे बदलने के लिए, उसके विरोध में खड़ा होना

चाहिए । तभी जाकर बदलाव हो सकता है । वे परिवर्तन के लिए क्रांति का आह्वान करते हैं –

" गाओ...!
काई किनारे से लग जाए
अपने अस्तित्व की शुद्ध चेतना जग जाए
जल में
ऐसा उबाल लाओ.....!"[19]

दुष्यंत कुमार की कविताओं में आर्थिक शोषण के कई चित्र उपलब्ध होते हैं । मार्क्स ने पूँजीवादी सभ्यता की विकृतियों से परिचित कराया । शोषण को आधार बनाकर अपना विकास करनेवाले पूँजीतंत्र की मार्क्स ने आलोचना की है । दुष्यंत कुमार ने अपनी कई कविताओं में पूँजीवादी समाज-व्यवस्था से आक्रांत किसान और मजदूरों की विपन्न अवस्था और नारकीय जीवन को उभारते हुए पूँजीवादी समाज–व्यवस्था की विसंगतियों पर तीव्र आलोचना की है । उनकी कविताओं में किसान-मजदूरों के प्रति सहानुभूति का भाव दिखाई पड़ता है । 'तुमने देखा ', 'सवाल ये है', 'गाते-गाते','कहाँ से शुरू करे यात्रा' ,'मंत्री की मैना' 'तुलना', 'जनता' आदि कविताओं आमजन की दुरावस्था को साकार कर दिया गया है । एक विपन्न, क्षुधातुर आमजन की दयनीय अवस्था को प्रकट करते हुए कवि पूँजी परिचालित संसदीय लोकतंत्र पर कटाक्ष करते हुए लिखते हैं –

" भूख है तो सब्र कर,रोटी नहीं तो क्या हुआ
आजकल दिल्ली में है जेरे बहस यह मुद्दा "[20]

'क्यों अपने प्रण को भूल गये' कविता में कवि अपने को 'सोशलिस्ट ' मानते हुए पूँजीपतियों पर कटाक्ष करते हैं –

" हम सोशलिस्ट हैं, भारत में
मजदूर राज्य दिखला देंगे
पूँजीपतियों के छीन सभी
आसन, किसान बिठला देंगे "[21]

अन्याय का विरोध दुष्यंत कुमार की जीवन-दृष्टि का प्रमुख वैशिष्ट्य रहा है । इसी विरोध के क्रम में वे बार-बार जनविरोधी व्यवस्था की खामियों और चालाकियों को उजागर करते हुए दिखलाई पड़ते हैं । प्रस्तुत शे'र में भी वे सीधे-सीधे व्यवस्था के नकारेपन को प्रकट कर देते हैं –

" बड़ा लगाव है इस मोड़ से निगाहों को,
कि सबसे पहले यहीं रोशनी हलाल हुई ।
कोई निजात की सूरत नहीं रही, न सही ,
मगर निजात की कोशिश तो एक मिसाल हुई ।"[22]

दुष्यंत कुमार के तीनों काव्य-संग्रहों और गजल-संग्रह में उनकी दृष्टि विद्रोहात्मक रही है । कवि का यह विद्रोह 'स्व-अस्तित्व' से अधिक 'पर-

अस्तित्व' के लिए हैं । दुष्यंत कुमार के अंतिम दौर की रचनाएँ 'जलते हुए वन का वसंत' और 'साये में धूप' में उनका विद्रोही तेवर चरम पर है ।

अस्तु, दुष्यंत कुमार की रचनाओं में मार्क्स का प्रभाव भले ही परिलक्षित होता हो, किंतु वे सीधे तौर पर मार्क्सवादी नहीं थे । समाज के उपेक्षित जनों के प्रति जो करूणा और सहानुभूति मार्क्सवाद में दिखायी देता है, उससे कवि आकृष्ट हुए । उन्होंने विचारधारा को केवल और केवल मानवीयता की कसौटी पर ही परखा है । आलोचक विजय बहादुर सिंह का मानना है –''उनकी कविता एक ऐसी व्यवस्था का सपना लिए हुए हैं जिसका विश्वास प्रत्येक स्तर पर लोक की मुक्ति में है । वे गांधी के दरिद्रनारायण और मार्क्स के सर्वहारा-मजूर और किसान-दोनों की मुक्ति के पक्षधर हैं । वे उस अवाम के साथ हैं जिसका ऐतिहासिक सपना चूर–चूर हो गया है और जो खुद अपने ही लोकतंत्र में आत्मनिर्वासित-सा है ।''[23]

कवि ने कभी भी अपने-आप को वाद की संकीर्ण सीमा में बाँध कर नहीं रखा । वे मार्क्सवाद के सामाजिक चेतना से प्रभावित अवश्य होते हैं, पर उसके पालतू अनुचर नहीं बनते । समाज व्यवस्था में परिवर्तन लाकर सामान्यजन की स्थिति सुधारने के लिए वे क्रांति का रास्ता अपनाने पर जो जोर देते हैं, उसे केवल मार्क्सवादी विचारधारा का प्रभाव ही मानना चाहिये । दुष्यंत कुमार की कविता जनता से सम्पृक्त है । यही सम्पृक्ता उनमें शोषकों के प्रति आक्रोश और

क्षोभ तथा उपेक्षित वर्ग के प्रति सहानुभूति और करूणा की सृष्टि करती है ।

4. आस्थावादी दृष्टि

दुष्यंत कुमार जिस दौर में सृजनरत थे, वह दौर अनास्था, अविश्वास, संशय और निराशा का दौर था । युगीन संत्रास से पीड़ित कवि निज में आबद्ध होकर अपनी लेखनी को भी कुंठित बना रहे थे । ऐसे दौर में जीवट व्यक्तित्व के स्वामी कवि दुष्यंत कुमार आत्मविश्वास से परिपूर्ण होकर साहित्य जगत में कदम रखते हैं । कुंठा न तो कवि दुष्यंत कुमार के व्यक्तित्व की पहचान है और न ही उनके लेखन की । जीवन के प्रति उनमें आस्था है । वे जीवन की विषमताओं से घबराकर अपने को निजत्व में आबद्ध नहीं करते । वे समष्टि के कवि हैं । समष्टि के संसार का आरोह-अवरोह उन्हें उद्वेलित करता है, उनके जीवन की त्रासदी को देखकर कवि कभी-कभी निराश भी हो जाते हैं, किंतु यह निराशा क्षणिक होती है –

" बोलो मान लूँ क्यों जिन्दगी से हार
माना मौत के आते यहाँ त्यौहार

X X X

मुस्कराकर जो बनाते है विपद गलहार
उनको, सिंधु बन जाता स्वयं पतवार
जिन्दादिल मनुज जो हैं उन्हीं के पास "[24]

दुष्यंत कुमार की जीवन-दृष्टि आस्थावादी है । नई कविता के अनास्थावादी दौर में वे 'सूर्य का स्वागत' संग्रह के माध्यम से आस्था के सूर्य से जग को रौशन करने के लिए 'काई भरे आँगन' और 'चिकनी-काली दिवार' पर सूर्य का स्वागत करने के लिए उत्सुक दिखते हैं । आलोचक विजय बहादुर सिंह कवि दुष्यंत कुमार के आस्थावादी जीवन–दृष्टि की महत्ता को रेखांकित करते हुए लिखते हैं – ''यह लक्ष्य करने की बात है कि जिस दौर में समूचा नवलेखन निराशा और अनास्था के अनुभवों की अभिव्यक्तियों से भरा हुआ था, कुंठा और संत्रास जिसके चरित्र से हुए बैठे थे, दुष्यंत 'सूर्य का स्वागत' में आस्था और पौरूष का स्वर लेकर आए थे ।''[25]

'सूर्यास्तः एक इम्प्रेशन' दुष्यंत कुमार की आस्थावादी दृष्टि को प्रमाणित करनेवाली एक महत्वपूर्ण कविता है । इस कविता में कवि अपने मानसिक द्वंद्व को चित्रित करते हैं –

'' सूरज के साथ
हृदय डूब गया मेरा
अनगिन क्षणों तक
स्तब्ध खड़ा रहा वहीं
क्षुब्ध हृदय लिए ।
औ' मैं स्वयं डूबने को था

स्वयं डूब जाता मैं

यदि मुझको विश्वास यह न होता–

'मैं कल फिर देखूँगा यही सूर्य

ज्योति-किरणों से भरा–पूरा

धरती के उर्वर-अनुर्वर प्रांगण को

जोतता-बोता हुआ,

हँसता, खुश होता हुआ ।''[26]

कवि की यह आस्थावादी दृष्टि द्वंद्वात्मक स्थिति में कवि को विचलित होने नहीं देता है। आस्था की पतवार थामे कवि पुन: आशा रूपी सूर्य को देखने के लिए इंतजार करने लगे ।

आमजन में कवि को अगाध आस्था है । उन्हें विश्वास है कि सामान्यजन अपने तमाम संशय एवं भय को दरकिनार करते हुए दमनकारी व्यवस्था में परिवर्तन के लिए आगे बढ़ेंगे । वे सामान्य जन को खुद पर विश्वास करना सिखाते हैं । उन्हें लगता है कि अगर व्यक्ति को स्वयं पर आस्था होगा, तो हर चीज सम्भव हो जाएगा–

'' कैसे आकाश में सूराख नहीं हो सकता,

एक पत्थर तो तबीयत से उछालो यारो!'' [27]

दुष्यंत कुमार की यही आस्था, उन्हें अविस्मरणीय बना देती है । मूल्य विघटन के उस दौर में भी कवि आस्था का पतवार थामे निरंतर आगे बढ़ रहे थे और उस अवाम को भी आगे बढ़ने के लिए प्रेरित कर रहे थे, जो मोहभंग और मूल्यहीनता से आक्रांत होकर अनास्थावादी हो रही थी–

" इस नदी की धार में ठंडी हवा आती तो है ,
नाव जर्जर ही सही, लहरों से टकराती तो है ।"
एक चादर साँझ ने सारे नगर पर डाल दी,
यह अँधेरे की सड़क उस भोर तक जाती तो है । "[28]

दुष्यंत कुमार के बारे में कवि सर्वेश्वर दयाल सक्सेना लिखते हैं –"वह वर्तमान की पीड़ा समझता था । उसे आने वाले दिनों पर आस्था थी । हँसता रहता और जहर पीता रहता । वह जानता था इंसान को तोड़नेवाली शक्ति कौन-सी है । वह अपना सब कुछ निछावर कर देना भी चाहता था ।"[29]

अस्तु, कवि ने अपने समय में जनविरोधी परिस्थितियों को पनपते और विकसित होते देखा था पर उन्हें उस जन में अगाध आस्था थी कि वह एक दिन जागरूक और सचेत होकर अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिए अग्रसर होगा । यह आस्था और विश्वास ही है कि कवि जाते-जाते तेल से भींगी हुई बाती छोड़ जाते हैं ।

5. आशावादी दृष्टि

आशा दुष्यंत कुमार के जीवन-दृष्टि का केंद्रीय तत्व है । दुष्यंत कुमार कितनी ही विपरीत परिस्थिति क्यों न हो, आशा के दीप को बुझने नहीं देते हैं । यही आशा कवि के हर नामुमकिन कार्य को मुमकिन बना देती है –

" तुम न मानो शब्द कोई है न नामुमकिन
कल उगेंगे चाँद–तारे, कल उगेगा दिन,
कल फसल देंगे समय को, यही 'बंजर खेत' । "[30]

कवि का यही आशावादी नजरिया, उनमें विपरीत परिस्थितियों पर विजय होने का उत्साह जगाती है । उन्हें दृढ़ निश्चयी बनाती है –

" फेनिल आवर्तों के मध्य
अजगरों से घिरा हुआ
विष-बुझी फुंकारें
सुनता-सहता,
अगम, नीलवर्णी,
इस जल के कालियादाह में
दहता,
सुनो, कृष्ण हूँ मैं ,
भूल से साथियों ने

इधर फेंक दी थी जो गेंद,

उसे लेने आया हूँ

(आया था

आऊँगा)

लेकर ही जाऊँगा!''[31]

अपनी आशावादी दृष्टि के कारण कवि वर्तमान वीभत्स यथार्थ का प्रत्यक्ष साक्षात्कार करने के बावजूद निराश और हताश नहीं होते हैं । आशा की एक क्षीण लौ को लेकर कवि आश्वस्त है कि परिवर्तन होगा और सामान्यजन के पक्ष में होगा । जनकवि दुष्यंत कुमार को जब भी उम्मीद की एक किरण नजर आयी है, वे उत्साहित होकर निराश, हताश जनता को आश्वस्त करते हुए दिखने लगते हैं । मोहभंग की कष्टदायी पीड़ा को झेलने वाली आम जनता को नाउम्मीदी से उम्मीद की ओर ले जाने के लिए कवि सजग ही नहीं दृढ़ प्रतिज्ञ दिखते हैं । वे नाउम्मीद जनता से कहते हैं –

'' एक चिनगारी कहीं से ढूँढ़ लाओ दोस्तो ,

इस दिए में तेल से भीगी हुई बाती तो है ।''[32]

'यह साहस' कविता में कवि निराश जनता में व्यवस्था के विरूद्ध आवाज उठाने का साहस जगाते हुए दिखाई देते हैं –

'' लेकिन दीवारों को कौन लोग जोड़ते हैं ?

कौन लोग राहों को स्वयं उधर मोड़ते हैं ?

कौन लोग माथों की पीड़ा से तंग आकर ,

या अपनी राहों के मोड़ों से उकताकर

जाकर दीवारों को नींव तक झिंझोड़ते हैं !

एक साथ कई–कई दीवारें तोड़ते हैं !

– पर तुम में यह साहस क्यों नहीं उभरता है ?''[33]

कवि को आदत है रोशनी खोजने और उससे अंधकार मिटाने की –

'' मेरी तो आदत है

रोशनी जहाँ भी हो

उसे खोज लाऊँगा

कातरता, चुप्पी या चीखें

या हारे हुओं की खीज

जहाँ भी मिलेंगी

उन्हें प्यार के सितार पर बजाऊँगा ।''[34]

दुष्यंत कुमार की आशावादी दृष्टि के बारे में आलोचक विजय बहादुर सिंह लिखते हैं – ''अपने अन्य कई समकालीनों की तरह वे यह मानने को राजी नहीं थे, कि हमारे पास कोई मूल्य बचे ही नहीं हैं और दो–दो महायुद्धों के बाद विश्व लगभग स्वप्नहीन हो उठा है । ''[35]

दुष्यंत कुमार ने अपने कवि-कर्म के साथ कभी भी समझौता नहीं किया । उनके लिए कविता उनके अस्तित्व से भी अधिक महत्त्वपूर्ण थी और उसके साथ वे पूरी ईमानदारी के साथ पेश आये । कविता ने उन्हें जिन्दा किया और अब वे कविता के द्वारा मृतप्राय जनता को जिन्दा करने के इच्छुक है –

" कभी इन्हीं शब्दों ने
जिन्दा किया था मुझे
कितनी बढ़ी है इनकी शक्ति
अब देखूँगा
कितने मनुष्यों को और जिला सकते हैं ?"[36]

कविता की सच्चाई की रक्षा के लिए उन्होंने हर जोखिम को सहर्ष उठाया पर किसी भी सूरत में कविता पर आँच नहीं आने दी । दुष्यंत कुमार के भाई प्रेम त्यागी उनके इसी जुझारूप के बारे में लिखते हैं –"अपने कवि की जरूरतों को पूरा करने के लिए उन्होंने जिन्दगी को उस जोखिम के साथ जिया, जिससे कि दूसरे अक्सर कतराकर निकल जाते हैं ।"[37] जब दुष्यंत कुमार के समकालीन अन्य कवि कविता में नकली मुखौटे लगाकर ख्याति अर्जित करने में लगे हुए थे, तब भी दुष्यंत कुमार अपने में बेफिक्र केवल सामान्यजन को केंद्रित करके कवि-कर्म कर रहे थे । कवि दुष्यंत कुमार की मानवतावादी दृष्टि उन्हें एक जुझारू सर्जक बनाती है । उनका यह जुझारू व्यक्तित्व उनकी रचनाधर्मिता का प्राण तत्व है ।

दुष्यंत कुमार ने जीवन को भरपूर जिया । निराशा के गहन स्तर पर पहुँचकर भी उन्होंने उदासी को अपने चेहरे पर आने नहीं दिया । कवि का मानना है कि जब तक प्राण है, व्यक्ति को धैर्य के साथ विरोधी ताकतों का सामना करना चाहिये । हताशा और निराशा मनुष्य की आंतरिक शक्ति को क्षीण कर उसे दुर्बल बना देती है । इसीलिए कवि थके हुए बटोही से कहते हैं –

" अगर जिन्दगी की साँसों के पृष्ठ बदलते हैं
अगर माँगकर विदा प्राण भी तन से चलते हैं
जीवन –पथ के थके बटोही मत उदास हो
अगर नियति की कोप–दृष्टि का दीपक
जल सकना संभव है
अगर आँधियों का रूख तेरी ओर
बदल सकना संभव है
तो यह भी मत भूल कि जीवन की मंजिल भी यहीं कहीं "[38]

6. मानवतावादी दृष्टि

मानवतावादी दृष्टि सम्पन्न रचनाकार दुष्यंत कुमार का मानवता का हनन करनेवाली शक्तियों से छत्तीस का आकड़ा है । उन्होंने लिखा भी है – "मेरे लिए मनुष्य मात्र की अवमानना सबसे अधिक कष्टप्रद है । उस पर मेरी प्रतिक्रिया

नितांत व्यक्तिगत ढ़ग से होती है । "[39] आमजन के जीवन के दर्द और अभाव को कवि ने गहराई से महसूस किया है । यही वजह है कि उनमें मानव-मात्र के लिए गहन करूणा और चिंता दिखलाई पड़ती है । मानवतावादी जीवन-दृष्टि होने के कारण ही उनकी रचनाओं का स्वर व्यंग्यात्मक हो गया है । व्यंग्य के सहारे कवि ने निरंकुश, जनविरोधी शासन-व्यवस्था की धज्जियाँ उड़ाकर रख दी है । अन्याय को मौन होकर देखना, दुष्यंत कुमार की फिदरत नहीं है । वे लिखते हैं –

" मैंने सोचा था-जब किसी को दिखाई नहीं देता
मैं भी बन्द कर लूँ अपनी आँखें
न सोचूँ
एक ज्वालामुखी फूट रहा है ।
घुल जाने दूँ लावे में
तड़प- तड़पकर एक शिशु
प्रजातंत्र का भविष्य –
जो मेरे भीतर मीठी नींद सो रहा है ।
मुझे क्या पड़ी है
जो मैं देखूँ, या बोलूँ या कहूँ कि मेरे आसपास
नरहत्याओं का एक महायज्ञ हो रहा है ।"[40]

उनकी कविता और गज़लों में मानवतावादी स्वर जगह-जगह मुखरित

हुई है । कवि ने अपने को 'भूखी मानवता का कवि और जर्जर जनता का उद्घोषक' घोषित किया है और सही मायने में कवि मानव-मात्र के कवि सिद्ध हुए हैं । कवि आमजन के साथ अपने को और अपनी लेखनी को सम्पृक्त महसूस करते हैं –

" तुम लोगों के ही क्षण मैं भी तो जीता हूँ
मत समझो तुम अपने को एकाकी हरगिज
मैं भी तुम लोगों के समान ही जीता हूँ
मैंने कोशिश की नहीं कभी बस यों ही
ये फूट पड़ी है जलसोते–सी अनायास
बालिका समझकर कलम अंगुली पकड़ा दी
अब अपने पाँवों चलने लगी समझती है
हँसती–रोती है देख–देखकर आस-पास"[41]

कवि दुष्यंत कुमार मानते हैं कि शब्दों को जोड़कर और थोड़ी–बहुत भावुकता मिश्रित कर कविता का निर्माण कर कवि धर्म का निर्वाह तो किया जा सकता है किंतु जीवन की पीड़ा को भोगकर उसे महज कविता का शक्ल न देते हुए, बिना शर्त अपने सामाजिक और जन सरोकारों को उसमें विन्यस्त कर देना ही सच्चे कवि की सच्ची पहचान है –

" मैंने तो यही कहा

कविता की पीड़ा से कहीं अधिक
गहरी पीड़ाएँ हैं जीव
जो झेली जाती हैं बिना
बिना किसी आँसू के हर क्षण में ''[42]

दुष्यंत कुमार ने लिखा है–''आज अपने दायित्वों के विश्लेषण का और यह सोचने का समय आ गया है कि अगर साहित्य को संकट का सामना करने योग्य बनाना है तो साहित्यकार को एक जीवन–दर्शन अपनाना पड़ेगा, और वह जीवन–दर्शन घृणा और युद्ध का प्रचार का न होकर ऐसे शाश्वत मूल्यों का होगा जिसमें शक्ति होगी, पर दया–रहीत नहीं, अहिंसा होगी पर साहस–शून्य नहीं, प्रेम और विश्व–बंधुत्व होगा पर परावलम्बन नहीं ।

ऐसा साहित्य बिसरती–छितराती जनशक्ति को एक सूत्र में बाँधकर दिशा देनेवाला तो होगा ही, साथ ही स्थायी भी होगा ।''[43]

कवि दुष्यंत कुमार के सृजन-संसार में सामान्यजन का उल्लेखनीय स्थान रहा है । यही वजह है कि उनकी जीवन-दृष्टि भी उन्हीं के सरोकार के अनुरूप निर्मित हुई है । मानवतावादी दृष्टिकोण दुष्यंत कुमार की संवेदना और चिंतन की धुरी है । लोकहित को केंद्र में रखने के कारण ही वे कभी गाँधीवादी विचारधारा से प्रभावित होते हैं, तो कभी मार्क्सवादी विचारधारा से । उनकी प्रारम्भिक और परवर्ती जीवन-दृष्टि में जो बदलाव दृष्टिगोचर होता है, उसके मूल में

युगीन जनविरोधी परिस्थितियों का अवदान रहा है । उनकी जीवन-दृष्टि का विकास मानवता की आवश्यकता के अनुरूप हुआ । इसी मानवता की रक्षा के लिए परवर्ती दौर में वे विद्रोही हो जाते हैं और मानव-विरोधी शक्तियों की कटु आलोचना करने लगते हैं । उनकी जीवन–दृष्टि आध्यात्मिक धरातल पर अवस्थित न होकर सामाजिक यथार्थ के कठोर धरातल पर अवलम्बित है, जिसका ध्येय समाज में प्रेम और विश्व-बंधुत्व की स्थापना करना है ।

सन्दर्भ-सूची

1. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 179

2. प्रभाकर विष्णु, गाँधी: समय, समाज और संस्कृति, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2003, पृष्ठ संख्या – 148

3. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या –26

4. वही, पृष्ठ संख्या –145

5. वही, पृष्ठ संख्या –307

6. प्रभाकर विष्णु, गाँधी: समय, समाज और संस्कृति, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2003, पृष्ठ संख्या –112

7. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 144

8. वही, पृष्ठ संख्या –26

9. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 4, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 374

10. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 338

11. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 245

12. वही, पृष्ठ संख्या – 222

13. सं.– विजय बहादुर सिंह, यारों के यार दुष्यंत कुमार, यश पब्लिकेशंस, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2008, पृष्ठ संख्या – 103

14. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 488

15. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 288

16. वही, पृष्ठ संख्या – 284

17. वही, पृष्ठ संख्या – 250

18. वही, पृष्ठ संख्या – 232

19. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 374

20. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या –266

21. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 155

22. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 288

23. वही, पृष्ठ संख्या –16

24. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 244

25. सं.– विजय बहादुर सिंह, यारों के यार दुष्यंत कुमार, यश पब्लिकेशंस, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2008, पृष्ठ संख्या – 13

26. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 361

27. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या –283

28. वही, पृष्ठ संख्या –263

29. सं.– विजय बहादुर सिंह, यारों के यार दुष्यंत कुमार, यश पब्लिकेशंस, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2008, पृष्ठ संख्या – 76

30. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या –381

31. वही, पृष्ठ संख्या –38

32. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 263

33. वही, पृष्ठ संख्या – 196

34. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 457

35. सं.– विजय बहादुर सिंह, यारों के यार दुष्यंत कुमार, यश पब्लिकेशंस, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2008, पृष्ठ संख्या – 105

36. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 370

37. सं.– विजय बहादुर सिंह, यारों के यार दुष्यंत कुमार, यश पब्लिकेशंस, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2008, पृष्ठ संख्या – 81

38. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 253

39. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 140

40. वही, पृष्ठ संख्या – 170

41. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 389

42. वही, पृष्ठ संख्या –307

43. . सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 4, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या –375